

## धूमिल

### जीवन परिचय

हिंदी साहित्य-जगत में धूमिल नाम से प्रसिद्ध कवि सुदामा पाण्डेय का जन्म 9 नवम्बर, 1936 ई. में वाराणसी जनपद के खेवली नामक एक छोटे से गांव में हुआ था। धूमिल के पिता पं० शिवनायक पाण्डेय और माता रसवंती देवी की आर्थिक स्थिति को देखते हुए उन्हें निम्न मध्यवर्गीय परिवार का सदस्य माना जा सकता है। इनकी प्रारंभिक शिक्षा गांव के निकटवर्ती स्कूल मतसार और मिडिल तथा हाई स्कूल की शिक्षा अपने गांव से तीन किलोमीटर दूरी पर स्थित हरहुआ बाज़ार के 'काशी इंटर कालेज' में सम्पन्न हुई थी। आठवीं कक्षा में सर्वप्रथम आने के कारण मिलने वाली छात्र-वृत्ति के सहारे इन्होंने अपने पिता के असामयिक निधन के बावजूद 1953 में हाई स्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण की। आगे पढ़ाई जारी रखने के उत्साह में धूमिल ने हरिश्चन्द्र इंटर कालेज, वाराणसी में विज्ञान विषय में प्रवेश लिया। अपने गांव से 12 किलोमीटर दूर शहर में रहने के खर्च को न वहन कर पाने के कारण इन्हें पढ़ाई छोड़ देनी पड़ी।

12 वर्ष की अवस्था में पिता निधन और 13 वर्ष की अवस्था में विवाह ने इनके जीवन-संग्राम को अत्यंत कठोर बना दिया। चार छोटे भाइयों, विधवा माँ, पत्नी और चाची के भरण-पोषण के लिए कृषि कार्य को अपर्याप्त समझ कर वे रोजी-रोटी की तलाश में कलकत्ता चले गए। कोई काम न मिलने की स्थिति में इन्होंने कुछ दिनों तक लोहा ढोने का काम किया। एक रिश्तेदार की सहायता से लकड़ी के एक बड़े व्यापारी के यहाँ अच्छी नौकरी मिल गई। दो-ढाई वर्ष तक नौकरी करने के बाद धनलोभुषण व्यवसायी से लड़-झगड़ कर वे पुनः वाराणसी आ गए। नौकरी से बचे हुए कुछ पैसों की सहायता से इन्होंने 1957 में वाराणसी के 'औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान' में प्रवेश लिया और 1958 में विद्युत डिप्लोमा में प्रथम श्रेणी में प्रथम स्थान प्राप्त कर वहीं पर विद्युत अनुदेशक के पद पर नियुक्त हो गए। जीवन पर्यन्त वे इसी पद पर कार्यरत रहे। अपनी कुशलता और कार्यक्षमता के बावजूद उच्चाधिकारियों से इनकी कभी बनी नहीं। फलस्वरूप वाराणसी से सीतापुर, बलिया, सहारनपुर आदि प्रशिक्षण संस्थानों में उनका स्थानांतरण होता रहा।

धूमिल के समझौता विहीन व्यक्तित्व में उनके पारिवारिक जीवन और ग्रामीण परिवेश का विशेष योगदान रहा है। किसी भी कीमत पर कभी भी उन्होंने अन्याय के साथ समझौता नहीं किया। चाहे गाँव के पट्टीदार हों या प्रशिक्षण संस्थान के अधिकारी-कर्मचारी, चाहे अपने आस-पास के मिलने वाले लोग-बाग हों या साहित्य के क्षेत्र में सक्रिय संस्कृति कर्मी-सर्वत्र शत्रु और मित्र के रूप में इन्होंने एक दूरी या निकटता बनाए रखी है। उनकी कथनी-करनी

या अंदर-बाहर में किसी तरह का अलगाव नहीं था। इसीलिए उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में भी एकरूपता मिलती है। जीवन-संघर्षों से जूझते हुए, काव्य-रचना में निरंतर अपना योगदान करते हुए 10 फरवरी, 1975 को ब्रेन ट्यूमर के असाध्य रोग से पीड़ित धूमिल ने लखनऊ के एक अस्पताल में दम तोड़ दिया। 38-39 वर्षों की अल्पायु में उनका सार्थक रचना-काल मात्र 10-12 वर्षों का है। इस अल्पावधि में उन्होंने हिंदी काव्य-यात्रा को एक नई दिशा प्रदान कर अपना ऐतिहासिक महत्त्व स्थापित किया है।

### साहित्यिक योगदान

धूमिल की कविताओं ने अपनी अंतर्वस्तु और शिल्पगत बनावट-बुनावट की ताज़गी और सादगी के कारण हिंदी पाठकों और आलोचकों का ध्यान एक दम से अपनी ओर आकृष्ट किया। अपने समय की अकविता, क्रुद्ध युवा पीढ़ी की कविता, भूखी और श्मशानी पीढ़ी की कविता के निर्वीर्य आक्रोश से भिन्न धूमिल के आक्रोश के मूल में सर्वत्र शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध मानवीय मुक्ति का पक्ष सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जा सकता है। इस प्रक्रिया में कविता की शब्दार्थ व्यवस्था से लेकर देश की प्रजातांत्रिक संसदीय व्यवस्था, उसकी पूँजीवादी औद्योगिक अर्थव्यवस्था, प्रशासनिक एवं न्याय व्यवस्था तक - सभी उनकी मार की सीमा में रहे हैं। समूची व्यवस्था से आक्रांत देश की साधारण जनता की बदहाली से खिन्न होकर वे स्वयं से प्रश्न करते हैं, 'बीस साल बाद/ मैं अपने आप से सवाल करता हूँ/ कि जानवर बनने के लिए कितने सब्र की ज़रूरत होती है?/ .... कि संत और सिपाही में/ देश का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कौन है?/ .... क्या आज़ादी तीन थके हुए रंगों का नाम है/ जिन्हें एक पहिया ढोता है/ या इसका कोई खास मतलब होता है।' लेकिन उसे स्वयं से या अन्यत्र कहीं से भी इसका उत्तर नहीं मिल पाता। इस स्थिति से साक्षात्कार के बाद धूमिल महसूस करते हैं कि 'अकेला कवि एक कटघरा होता है।' "भाषा की रात" शीर्षक कविता में इस 'कटघरे' से निकल कर वे सारे देश की जनता को आवाज़ देते हैं :

“औ भाषावार हमलों से हलकान मेरे भाई/ क्या तुम्हें अब  
भी/ उसी का भरोसा है?/ जिसके अधिकार में हमारी लिट्टी  
है/ चावल है। इडली है/ डोसा है/ हाय! जो असली  
कसाई है/ उसकी निगाह में/ तुम्हारा यह तमिल दुख/  
मेरी इस भोजपुरी पीड़ा का/ भाई है/ भाषा उस तिकड़मी  
दरिंदे का कौर है/ जो सड़क पर और है/ संसद में और  
है/ इसलिए बाहर आ! / भाषा ठीक करने से पहले  
आदमी को ठीक कर।”

व्यवस्था की इस दरिंदगी को, इस पशुता को धूमिल ने कई कोणों से उजागर करने का प्रयास किया है। लोगों की एकता को तोड़ने के लिए, उन्हें विभाजित करने के लिए व्यवस्था

के अलमबरदार उसकी भूख की जगह कभी भाषा को मुद्दा बना लेते हैं तो कभी धर्म या साम्प्रदायिकता को, कभी क्षेत्रीय हित को तो कभी देश की सुरक्षा को प्रमुख मुद्दा बना कर अपने शोषण और दमनचक्र को जारी रखते हैं। 'भाषा की रात' शीर्षक कविता के साथ ही धूमिल ने 'जनतंत्र के सूर्योदय में', 'अकाल दर्शन', 'प्रजातंत्र के विरुद्ध', 'पटकथा' आदि अपनी अधिकांश कविताओं में भारतीय जनतंत्र की छाया में पलने वाली तमाम सारी सामाजिक-राजनीतिक विभिषिकाओं का निर्मम उद्घाटन करते हुए एक 'मुनासिब कार्यवाही' का आह्वान किया है। पाठ्यक्रम में निर्धारित कविताओं का अध्ययन करते हुए आप उपर्युक्त तथ्यों को आसानी से समझ सकेंगे।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से भी धूमिल ने अपनी एक नयी पहचान बनायी है। हिंदी काव्य की परम्परागत रूपक योजना, मिथक रचना-प्रतीक-विधान का परित्याग कर इन्होंने भाषा एवं शैली - दोनों ही दृष्टियों से 'सपाट बयानी' को अपनी कविता के लिए श्रेयष्कर समझा है। सामान्य बोल चाल की चालू भाषा और बिना लाग-लपेट के कहने का कौशल धूमिल की काव्य-शैली का प्रमुख आकर्षण है। कविता को 'एक सार्थक वक्तव्य', 'मुजरिम के कटघरे में खड़े एक बेकसूर आदमी का हलफनामा', 'भाषा में आदमी होने की तमीज़' आदि कहकर अपनी सपाट बयानी के कौशल की ओर संकेत किया है। विवेचन-विश्लेषण में न जाकर कुछ उदाहरणों द्वारा कवि की सपाट बयानी के कौशल को अधिक सार्थक ढंग से आप समझ सकेंगे - 'देश की संसद तेली की वह घानी है, जिसमें आधा तेल और आधा पानी है', 'मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है। जो मेरे सामने मुरम्मत के लिए खड़ा है', 'जिसकी भी पूँछ उठाई - मादा पाया', 'ज़िंदा रहने के पीछे अगर कोई तर्क नहीं है तो रामनामी (दुपट्टा), बेचकर या रण्डियों की दलाली करके रोजी कमाने में कोई फर्क नहीं है। यह एक ऐसा जनतंत्र है, जिसमें ज़िंदा रहने के लिए घोड़े और घास को एक जैसी छूट है। - इन उक्तियों से स्पष्ट है कि धूमिल ने अकविता और श्मशानी भूखी-क्रुद्ध पीढ़ी के दौर में एक सार्थक विद्रोह भाव ही नहीं, एक नया काव्य-शिल्प भी हिंदी की आगे आने वाली पीढ़ी को दिया। भाव, भाषा एवं शिल्प - सभी दृष्टियों से धूमिल ने हिंदी कविता की एक नयी परंपरा का सूत्रपात किया है। धूमिल की रचनाओं की सूची इस प्रकार है :

काव्य : 'संसद से सड़क तक' (1972), 'कल सुनना मुझे' (1976) तथा 'सुदामा पाण्डे का प्रजातंत्र' (1984) आदि।

## मुनासिब कार्रवाई

अकेला कवि कठघरा होता है  
इससे पहले कि 'वह' तुम्हें  
सिलसिले से काटकर अलग कर दे  
कविता पर

बहस शुरू करो  
और शहर को अपनी ओर  
झुका लो।

यह सबूत के लिए है।  
-रंगीन पत्रिकाओं में चरित्र -

पोंकता हुआ ईमान,  
जो दाँतों में फँसी हुई भाषा की  
तिकड़म है,

-टूटे हुए बकलस का खुफ्रिया तनाव,

-एक बातूनी घड़ी,

-वकील का लबार चोंगा,

-एक डरपोक चाकू

जिसका फल कानून की ज़द से  
सूत-भर कम है,

शिनाख़्त की इन तमाम चीज़ों के साथ

अपने लोगों की भीड़ में

भाषा को धीरे से धँसाओ।

बिना किसी घाव के शब्द

बाहर आ जायेंगे

जैसे परखी में बोरे का अनाज

चला आता है।

उन्हें परखो।

बाट की जगह अपना चेहरा रख दो।

यह न्याय के लिए है।

क्योंकि जिसमें थोड़ा-सा भी विवेक है,

वह जानता है कि आजकल

शहर कोतवाल की नीयत

और हथकड़ी का नम्बर एक है।  
और अब देखो कि काँटे का रुख  
किधर है।

कल तक वह उधर था  
जिधर आढ़तिया था।  
जिधर चुंगी का मुंशी बैठता था  
कल तक -

नगरपिता का सिर विरोध में  
हिलता था और तुम पाते थे -  
कि कविता का अर्थ  
बदल गया है।

मगर अब चीज़ों के गलत होने का  
पता चल गया है :  
एक रिश्ता गलत समय देने लगा है;  
उसकी मरम्मत के लिए  
घड़ीसाज़ की दुकान पर जाना  
सरासर भूल है।

तुम्हारे जिगरी दोस्त की कमर  
वक्त से पहले ही झुक गयी है  
उसके लिए -  
बढ़ई के आरी और बसूले से  
लड़ना फिज़ूल है।  
क्योंकि गलत होने की जड़  
न घड़ीसाज़ की दुकान में है,  
न बढ़ई के बसूले में  
और न आरी में है  
बल्कि वह इस समझदारी में है  
कि वित्त मन्त्री की ऐनक का  
कौन-सा शीशा कितना मोटा है;  
और विपक्ष की बेंच पर बैठे हुए  
नेता के भाइयों के नाम  
सस्ते गल्ले की कितनी दुकानों का  
कोटा है।

और जो चरित्रहीन है  
 उसकी रसोई में पकनेवाला चावल  
 कितना महीन है।  
 इस वक्त सचाई को जानना  
 विरोध में होना है।  
 और यहीं से -  
 अपराधियों की नाक के ठीक नीचे  
 कविता पर  
 बहस शुरू होती है।  
 चेहरे से चेहरा बटोरते हुए  
 एक तीखा स्वर  
 सवाल पर सवाल करता है।  
 सन्नाटा टूटता है।  
 गुँगे के मुँह से उत्तर फूटता है।  
 'कविता क्या है ?  
 कोई पहनावा है ?  
 कुर्ता-पाजामा है ?'  
 'ना, भाई, ना,  
 कविता -  
 शब्दों की अदालत में  
 मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का  
 हलफनामा है।'  
 'क्या यह व्यक्तित्व बनाने की -  
 चरित्र चमकाने की -  
 खाने-कमाने की -  
 चीज़ है ?'  
 'ना, भाई, ना,  
 कविता  
 भाषा में  
 आदमी होने की तमीज़ है।'

इस तरह सवाल और जवाब की मंज़िलें -  
 तय करके  
 थका-हारा सच -

एक दिन अपने खोये हुए चेहरे में  
वापस आता है,  
और अचानक, एक नदारद-सा आदमी  
समूचे शहर की जुबान बन जाता है।

लेकिन मैंने कहा -  
अकेला कवि कठघरा होता है।  
साथ ही, मुझे डर है कि 'वह' आदमी  
तुम्हें सिलसिले से काटकर  
अलग कर देने पर तुला है;  
जो आदमी के भेस में  
शातिर दरिन्दा है,  
जो हाथों और पैरों से पंगु हो चुका है  
मगर नाखून में ज़िन्दा है,  
जिसने विरोध का अक्षर-अक्षर  
अपने पक्ष में तोड़ लिया है।  
जो जानता है कि अकेला आदमी झूठ होता है।  
जिसके मन में पाप छाया हुआ है।  
जो आज अघाया हुआ है,  
और कल भी -  
जिसकी रोटी सुरक्षित है।  
'वह' तुम्हें अकेला कर देने पर  
तुला है।  
वक्त बहुत कम है।  
इसलिए कविता पर बहस  
शुरू करो  
और शहर को अपनी ओर झुका लो  
क्योंकि असली अपराधी का  
नामा लेने के लिए,  
कविता, सिर्फ़ उतनी ही देर तक सुरक्षित है  
जितनी देर, कीमा होने से पहले  
कसाई के ठीके और तनी हुई गँड़ास के बीच  
बोटी सुरक्षित है।

## नक्सलबाड़ी

'सहमति...

नहीं, यह समकालीन शब्द नहीं है  
इसे बालिगों के बीच चालू मत करो'  
-जंगल से जिरह करने के बाद  
उसके साथियों ने उसे समझाया कि भूख  
का इलाज नींद के पास है !

मगर इस बात से वह सहमत नहीं था  
विरोध के लिए सही शब्द टटोलते हुए  
उसने पाया कि वह अपनी जुबान  
सहुवाइन की जाँघ पर भूल आया है;  
फिर भी हकलाते हुए उसने कहा -  
'मुझे अपनी कविताओं के लिए  
दूसरे प्रजातन्त्र की तलाश है',  
सहसा तुम कहोगे और फिर एक दिन -  
पेट के इशारे पर  
प्रजातन्त्र से बाहर आकर  
वाजिब गुस्से के साथ अपने चेहरे से  
कूदोगे  
और अपने ही घूँसे पर  
गिर पड़ोगे।

क्या मैंने गलत कहा? आखिरकार  
इस खाली पेट के सिवा  
तुम्हारे पास वह कौन-सी सुरक्षित  
जगह है, जहाँ खड़े होकर  
तुम अपने दाहिने हाथ की  
साजिश के खिलाफ लड़ोगे ?

यह एक खुला हुआ सच है कि आदमी -  
दायें हाथ की नैतिकता से  
इस कदर मज़बूर होता है  
कि तमाम उम्र गुज़र जाती है मगर गाँड़  
सिर्फ, बायाँ हाथ धोता है।



और अब तो हवा भी बुझ चुकी है  
 और सारे इश्तहार उतार लिये गये हैं  
 जिनमें कल आदमी -  
 अकाल था। वक्त के  
 फालतू हिस्सों में  
 छोड़ी गयी पालतू कहानियाँ  
 देश-प्रेम के हिज्जे भूल चुकी हैं,  
 और वह सड़क -  
 समझौता बन गयी है  
 जिस पर खड़े होकर  
 कल तुमने संसद को  
 बाहर आने के लिए आवाज़ दी थी  
 नहीं, अब वहाँ कोई नहीं है  
 मतलब की इबारत से होकर  
 सब के सब व्यवस्था के पक्ष में  
 चले गये हैं। लेखपाल की  
 भाषा के लम्बे सुनसान में  
 जहाँ पालो और बंजर का फर्क  
 मिट चुका है चन्द्र खेत  
 हथकड़ी पहने खड़े हैं।

और विपक्ष में -  
 सिर्फ कविता है।  
 सिर्फ हज्जाम की खुली हुई 'किसमत' में एक उस्तुरा -  
 चमक रहा है।  
 सिर्फ भंगी का एक झाड़ू हिल रहा है  
 नागरिकता का हक हलाल करती हुई  
 गन्दगी के खिलाफ।

और तुम हो, विपक्ष में  
 बेकारी और नींद से परेशान।

और एक जंगल है -  
 मतदान के बाद खून में अँधेरा  
 पछींटा हुआ।  
 (जंगल मुखबिस है)

उसकी आँखों में  
चमकता हुआ भाईचारा  
किसी भी रोज़ तुम्हारे चेहरे की हरियाली को,  
बेमुरब्बत, चाट सकता है।

खबरदार !  
उसने तुम्हारे परिवार को  
नफ़रत के उस मुकाम पर ला खड़ा किया है  
कि कल तुम्हारा सबसे छोटा लड़का भी  
तुम्हारे पड़ासी का गला  
अचानक,  
अपनी स्लेट से काट सकता है।  
क्या मैंने गलत कहा ?

आख़िरकार...आख़िरकार...

## मोचीराम

राँपी से उठी हुई आँखों ने मुझे  
क्षण-भर टटोला  
और फिर  
जैसे पतियाये हुए स्वर में  
वह हँसते हुए बोला -  
बाबूजी ! सच कहूँ-मेरी निगाह में  
न कोई छोटा है  
न कोई बड़ा है  
मेरे लिए, हर आदमी एक जोड़ी जूता है  
जो मेरे सामने  
मरम्मत के लिए खड़ा है

और असल बात तो यह है  
कि वह चाहे जो है  
जैसा है, जहाँ कहीं है  
आजकल  
कोई आदमी जूते की नाप से  
बाहर नहीं है  
फिर भी मुझे ख्याल रहता है  
कि पेशेवर हाथों और फटे हुए जूतों के बीच  
कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है  
जिस पर टाँके पड़ते हैं,  
जो जूते से झाँकती हुई अंगुली की चोट छाती पर  
हथौड़े की तरह सहता है

यहाँ तरह-तरह के जूते आते हैं  
और आदमी की अलग-अलग 'नवैयत'  
बतलाते हैं  
सबकी अपनी-अपनी शक्ल है  
अपनी-अपनी शैली है  
मसलन एक जूता है :  
जूता क्या है-चकतियों की थैली है

इसे एक चेहरा पहनता है  
 जिसे चेचक ने चुग लिया है  
 उस पर उम्मीद को तरह देती हुई हँसी है  
 जैसे 'टेलीफ़ून' के खम्भे पर  
 कोई पतंग फँसी है  
 और खड़खड़ा रही है  
 'बाबूजी ! इस पर पैसा  
 क्यों फूँकते हो ?'  
 मैं कहना चाहता हूँ  
 मगर मेरी आवाज़ लड़खड़ा रही है  
 मैं महसूस करता हूँ - भीतर से  
 एक आवाज़ आती है - 'कैसे आदमी हो  
 अपनी जाति पर थूकते हो।'  
 आप यकीन करें, उस समय  
 मैं चकतियों की जगह आँखें टाँकता हूँ  
 और पेशे में पड़े हुए आदमी को  
 बड़ी मुश्किल से निबाहता हूँ

एक जूता और है जिससे पैर को  
 'नाँधकर' एक आदमी निकलता है  
 सैर को  
 न वह अक्लमन्द है  
 न वक्त का पाबन्द है  
 उसकी आँखों में लालच है  
 हाथों में घड़ी है  
 उसे कहीं जाना नहीं है  
 मगर चेहरे पर  
 बड़ी हड़बड़ी है  
 वह कोई बनिया है  
 या बिसाती है  
 मगर रोब ऐसा कि हिटलर का नाती है  
 'इशे बाँद्धो, उशे काट्टो, हियाँ ठोक्को, वहाँ पीट्टो  
 धिशशा दो, अइशा चमकाओ, जुते को ऐना बनाओ  
 ...ओफ़ ! बड़ी गर्मी है' रुमाल से हवा

करता है, मौसम के नाम पर बिसूरता है  
 सड़क पर आतियों-जातियों को  
 बानर की तरह घूरता है  
 गरज़ यह कि घण्टे-भर खटवाता है  
 मगर नामा देते वक्त  
 साफ़ 'नट' जाता है  
 'शरीफ़ों को लूटते हो' वह गुर्गता है  
 और कुछ सिक्के फेंककर  
 आगे बढ़ जाता है  
 अचानक चिहुंककर सड़क से उछलता है  
 और पटरी पर चढ़ जाता है  
 चोट जब पेशे पर पड़ती है  
 तो कहीं-न-कहीं एक चोर कील  
 दबी रह जाती है  
 जो मौका पाकर उभरती है  
 और अँगुली में गड़ती है  
 मगर इसका मतलब यह नहीं है  
 कि मुझे कोई ग़लतफ़हमी है  
 मुझे हर वक्त यह ख़याल रहता है कि जूते  
 और पेशे के बीच  
 कहीं-न-कहीं एक अदद आदमी है  
 जिस पर टाँके पड़ते हैं  
 जो जूते से झाँकती हुई अँगुली की चोट  
 छाती पर  
 हथौड़े की तरह सहता है  
 और बाबूजी ! असल बात तो यह है कि ज़िन्दा रहने के पीछे  
 अगर सही तर्क नहीं है  
 तो रामनामी बेचकर या रण्डियों की  
 दलाली करके रोज़ी कमाने में  
 कोई फर्क नहीं है  
 और यही वह जगह है जहाँ पर आदमी  
 अपन पेशे से छूटकर  
 भीड़ का टमकता हुआ हिस्सा बन जाता है  
 सभी लोगों की तरह

भाषा उसे काटती है  
मौसम सताता है  
अब आप इस बसन्त को ही लो,  
यह दिन को ताँत की तरह तानता है  
पेड़ों पर लाल-लाल पत्तों के हज़ारों सुखतल्ले  
धूप में, सीझने के लिए  
लटकाता है

सच कहता हूँ - उस समय  
राँपी की मूठ को हाथ में संभालना  
मुश्किल हो जाता है  
आँख कहीं जाती है  
हाथ कहीं जाता है  
मन किसी झुँझलाये हुए बच्चे-सा  
काम पर आने से बार-बार इनकार करता है  
लगता है कि चमड़े की शराफत के पीछे  
कोई जंगल है जो आदमी पर  
पेड़ से वार करता है  
और यह चौंकने की नहीं, सोचने की बात है  
मगर जो ज़िन्दगी को किताब से नापता है  
जो असलियत और अनुभव के बीच  
खून के किसी कमज़ात मौके पर कायर है  
वह बड़ी आसानी से कह सकता है  
कि यार ! तू मोची नहीं, शायर है  
असल में वह एक दिलचस्प ग़लतफ़हमी का  
शिकार है  
जो यह सोचता है कि पेशा एक जाति है  
और भाषा पर  
आदमी का नहीं, किसी जाति का अधिकार है  
जबकि असलियत यह है कि आग  
सबको जलाती है सच्चाई  
सबसे होकर गुज़रती है  
कुछ हैं जिन्हें शब्द मिल चुके हैं  
कुछ हैं जो अक्षरों के आगे अन्धे हैं

वे हर अन्याय को चुपचाप सहते हैं  
और पेट की आग से डरते हैं  
जबकि मैं जानता हूँ कि 'इनकार से भरी हुई एक चीख'

और 'एक समझदार चुप'  
दोनों का मतलब एक है -  
भविष्य गढ़ने में, 'चुप' और 'चीख'  
अपनी-अपनी जगह एक ही किस्म से  
अपना-अपना फ़र्ज अदा करते हैं

## राजकमल चौधरी

सोहर की पंक्तियों का रस  
(चमड़े की निर्जनता को गीला करने के लिए)  
नये सिरे से सोखने लगती हैं  
जाँघों में बढ़ती हुई लालच से  
भविष्य के रंगीन सपनों को  
जोखने लगती है  
मगर अब वह नहीं है

उसका मर जाना पतियों के लिए  
अपनी पत्नियों के पतिव्रता होने की  
गारण्टी है

मैं सोचता हूँ और शहर  
श्मशान के पिछले हिस्से के परिचित अँधेरे में  
किसी 'मरी' की तरह बैठा खड़ा है  
घण्टाघर में वक्त की कैंची  
कबूतरों के पंख कतर रही है  
चौराहों पर  
भीड़ किसी अपभ्रंश का शुद्ध रूप जानने के लिए  
उस प्रागैतिहासिक कथा की मुट्ठी  
खोलने में व्यस्त है जहाँ रात  
बनैले पशुओं ने विश्राम किया था। कविता में  
कुछ लोग मनुष्य की आत्मा और गाँजे की  
चिलम पर  
अँगुलियों के निशान की शिनाख्त कर रहे हैं  
मगर वह-  
अब वहाँ नहीं है  
मौसम की सूचना के साथ वक्त के काले हाशिये में  
एक मौत दर्ज़ कर दी गयी है  
'रा...ज...क...म...ल...चौ...ध...री'  
और मैं वापस छूट गया हूँ  
वर्तमान की बजबजाती हुई सतह पर



हिजड़ों की एक पूरी पीढ़ी लूप और अन्धा कूप के मसले पर  
 बहस कर रही है  
 आज़ादी-इस दरिद्र परिवार की बीससाला 'बिटिया'  
 मासिकधर्म में डूबे हुए क्वॉरिपन की आग से  
 अन्धे अतीत और लँगड़े भविष्य की  
 चिलम भर रही है  
 वर्तमान की सतह पर  
 अस्पताल की अन्तर्धाराओं और नर्सों का  
 सामुद्रिक सीखने के बाद  
 'स्वप्न-सुखद हो' छाप तकियों को फाड़कर  
 मैं  
 मृत्यु और मृत्यु नहीं के बीच की सरल रेखा  
 तलाश करता हूँ मगर वहाँ  
 सिर्फ चूहों की लेड़ियों  
 बिनौलों और स्वप्नभंग की आतुर मुद्राओं की  
 मौसमी नुमाइश है  
 जिसके भीतर कविता  
 किसी छूटी हुई आदत को दुहराते हुए जीने की  
 गुंजाइश है और अन्धकार है  
 जिसने चीज़ों को आसान कर दिया है

मेरे देखते ही देखते  
 उसकी तसवीर के नीचे 'स्वर्गीय' लिखकर  
 फूलदान की बगल में  
 बुद्धिमानों का अन्धापन और अन्धों का विवेक  
 मापने के लिए  
 सफेद पालतू बिल्ली  
 अपने पंजों के नीचे से कुछ शब्द  
 काढ़कर रख देती है  
 अचानक सड़कें  
 इश्तिहारों के रोज़नामचों में बदल जाती हैं  
 'सिरोसिस' की सड़ी हुई गाँठ  
 समकालीन कवियों की आँख बन जाती है  
 नफरत के अन्धे कुहराम में सैकड़ों कविताएँ

कत्ल कर दी जाती हैं  
मरी हुई गिलहरी की पीठ पर पहली मुहर  
लगाने के लिए और युकलिप्टस का दरख्त  
एक सामूहिक अफवाह में नंगा हो जाता है  
-उसे ज़िन्दगी और ज़िन्दगी के बीच  
कम से कम फासला  
रखते हुए जीना था  
यही वजह थी कि वह  
एक की निगाह में हीरा आदमी था  
तो दूसरी निगाह में  
कमीना था

-एक बात साफ थी  
उसकी हर आदत  
दुनिया के व्याकरण के खिलाफ थी

-न वह किसी का पुत्र था  
न भाई था  
न पति था  
न पिता था  
न मित्र था  
राख और जंगल से बना हुआ वह  
एक ऐसा चरित्र था  
जिसे किसी भी शर्त पर  
राजकमल होना था  
-वह सौ प्रतिशत सोना था  
ऐसा मैं नहीं कहूँगा  
मगर यह तै है कि उसकी शख्सियत  
घास थी  
वह जलते हुए मकान के नीचे भी  
हरा था  
-एक मतलबी आदमी जो अपनी ज़रूरतों में  
निहायत खरा था  
-उसे जंगल में

पेड़ की तलाश थी

-उसके पास शराब और गाँजा और शहनाई और औरतों के  
दिलफरेब किस्से थे

-मगर ये सब सिर्फ़ उन पर्दों के हिस्से थे

जिनकी आड़ में बैठकर

वह कविताएँ बुनता था

...अपनी वासनाओं के अँधेरे में

वह खोया हुआ देश था

जीभ और जाँघ के चालू भूगोल से

अलग हटकर उसकी कविता

एक ऐसी भाषा है जिसमें कहीं भी

'लेकिन', 'शायद', 'अगर', नहीं है

उसके लिए हम इल्मीनान से कह सकते हैं कि वह

एक ऐसा आदमी था जिसका मरना

कविता से बाहर नहीं है

सैकड़ों आवाज़ें हैं

जिनके इर्द-गिर्द बैठकर

चायघरों में

मेरे दोस्त अगली शोकसभा का कार्यक्रम

तैयार कर रहे हैं

एक नये कोरस की धुन और मौत की रोशनी में चमकने का  
साहस,

खोये हुए आदमी की हुलिया का इश्तिहार और एक रंगीन  
खाली बोतल,

तीन दर्जन काग़ों की चुप्पी और एक काला रिबन,

औसत दर्जे की टेप-रिकार्डिंग मशीन और बच्चों के खेलने

की विलायती पिस्तौल का देशी मॉडल-

मेरे दोस्त चायघरों में

अगली शोकसभा का कार्यक्रम तैयार कर रहे हैं

मगर मैं उनमें शरीक नहीं होना चाहता

मैं कविताओं में उनका पीछा करना चाहता हूँ

इसके पहले कि वे उसे किसी संख्या में

या व्याकरण की किसी अपाहिज धारणा में बदल दें

मैं उन तमाम चुनौतियों के लिए  
 खुद को तैयार करना चाहता हूँ  
 जिनका सामना करने के लिए छत्तीस साल तक  
 वह आदमी अन्धी गलियों में  
 नफ़रत का दरवाज़ा खटखटाकर  
 कैंचियों की दलाली करता रहा  
 छत्तीस साल तक गुप्त रोगों के इलाज की जड़ी  
 ढूँढ़ता रहा वेश्याओं और गँजेड़ियों के  
 नींद-भरे जंगल में

अपनी रुकी हुई किडनी के अन्धे दराज में  
 हाथ डालकर  
 कविताओं में बेलीस शब्द फेंकता रहा  
 और अन्त में -  
 अपने लिए सही टोपियों का चुनाव न कर सकने की -  
 हालत में बौखलाकर  
 अघोरियों की संगत में बैठ गया

मगर नहीं- अँधेरे घाटों पर बँधी हुई नावों को  
 अदृश्य द्वीपों की ओर खोलकर  
 कल उसे लोगों ने  
 गाँव की तरफ़ जाते हुए देखा था  
 उसके पैर वर्तमान की कीचड़ से लथपथ थे  
 उसकी पीठ झुकी हुई थी  
 उसके चेहरे पर  
 अनुभव की गहरी खराश थी :  
 'पूरा का पूरा यह युद्ध-काव्य  
 मैंने गलत जिया है  
 गलत किया है मैंने इस  
 कमरे को समझकर  
 जहाजी बेड़ों का बन्दरगाह...  
 ...इस अकाल बेला में  
 जम्बूद्वीप के प्रारंभ से ही यह अंधकार  
 बन गया था हमारा अन्तरंग संस्कार'

बार-बार

उसकी कविताओं में

बवासीर की गांठ की तरह शब्द

लहू उगलते हैं

और बार-बार मेरे भीतर टूटता है,

टूटता है और मुझे तैयार करता है

चुनौतियों के सामने।

उसका मरना मुझे जीने का सही कारण देता है

जबकि वे

याने कि मेरे दोस्त

पहियों और पाण्डुलिपियों की रायल्टी तय करने की

होड़ में

यह नहीं जानते

कि वह

फूलदानों, मछलियों, अँधेरों और कविताओं

को कौन-सा अर्थ

देने के लिए

किस जंगल

किसी समुद्र

किस शहर के अँधेरे में जाकर

गायब हो गया है

उन्होंने, सिर्फ, उसे

एक जलते हुए मकान की छत्तीसवीं खिड़की से

हवा में -

फाँदते हुए देखा है।

## कविता

उसे मालूम है कि शब्दों के पीछे  
कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं  
और हत्या अब लोगों की रुचि नहीं -  
आदत बन चुकी है  
वह किसी गँवार आदमी की उब से  
पैदा हुई थी और  
एक पढ़े-लिखे आदमी के साथ  
शहर में चली गयी

एक सम्पूर्ण स्त्री होने के पहले ही  
गर्भाधान की क्रिया से गुज़रते हुए  
उसने जाना की प्यार  
घनी आबादीवाली बस्तियों में  
मकान की तलाश है  
लगातार बारिश में भीगते हुए  
उसने जाना कि हर लड़की  
तीसरे गर्भपात के बाद  
धर्मशाला हो जाती है और कविता ।  
हर तीसरे पाठ के बाद  
नहीं- अब वहाँ कोई अर्थ खोजना व्यर्थ है  
पेशेवर भाषा के तस्कर-संकेतों  
और बैलमुत्ती इबारतों में  
अर्थ खोजना व्यर्थ है  
हाँ, हो सके तो बगल से गुज़रते हुए आदमी से कहो -  
लो, यह रहा तुम्हारा चेहरा,  
यह जुलूस के पीछे गिर पड़ा था  
इस वक्त इतना ही काफ़ी है

वह बहुत पहले की बात है  
जब कहीं, किसी निर्जन में  
आदिम पशुता चीखती थी और  
सारा नगर चौंक पड़ता था  
मगर अब -  
अब उसे मालूम है कि कविता  
घेराव में  
किसी बौखलाये हुए आदमी का  
संक्षिप्त एकालाप है

## अकाल-दर्शन

भूख कौन उपजाता है :  
वह इरादा जो तरह देता है  
या वह घृणा जो आँखों पर पट्टी बाँधकर  
हमें घास की सट्टी में छोड़ आती है ?

उस चालाक आदमी ने मेरी बात का उत्तर  
नहीं दिया।  
उसने गलियों और सड़कों और घरों में  
बाढ़ की तरह फैले हुए बच्चों की ओर इशारा किया  
और हँसने लगा।

मैंने उसका हाथ पकड़ते हुए कहा -  
'बच्चे तो बेकारी के दिनों की बरकत हैं'  
इससे वे भी सहमत हैं  
जो हमारी हालत पर तरस खाकर, खाने के लिए  
रसद देते हैं।  
उनका कहना है कि बच्चे  
हमें बसन्त बुनने में मदद देते हैं।

लेकिन यही वे भूलते हैं  
दरअस्ल, पेड़ों पर बच्चे नहीं  
हमारे अपराध फूलते हैं  
मगर उस चालाक आदमी ने मेरी किसी बात का उत्तर  
नहीं दिया और हँसता रहा- हँसता रहा-हँसता रहा  
फिर जल्दी से हाथ छुड़ाकर  
'जनता के हित में' स्थानान्तरित  
हो गया।

मैंने खुद को समझाया-यार !  
उस जगह खाली हाथ जाने से इस तरह  
क्यों झिझकते हो ?  
क्या तुम्हें किसी का सामना करना है ?



तुम वहाँ कुआँ झाँकते आदमी की  
सिर्फ पीठ देख सकते हो।

और सहसा मैंने पाया कि मैं खुद अपने सवालों के  
सामने खड़ा हूँ और

उस मुहावरे को समझ गया हूँ

जो आज़ादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है

जिससे न भूख मिट रही है, न मौसम

बदल रहा है।

लोग बिलबिला रहे हैं (पेड़ों को नंगा करते हुए)

पत्ते और छाल

खा रहे हैं

मर रहे हैं, दान

कर रहे हैं।

जलसों-जुलूसों में भीड़ की पूरी ईमानदारी से

हिस्सा ले रहे हैं और

अकाल को सोहर की तरह गा रहे हैं।

झुलसे हुए चेहरों पर कोई चेतावनी नहीं है।

मैंने जब भी उनसे कहा है देश शासन और राशन...

उन्होंने मुझे टोक दिया है।

अक्सर, वे मुझे अपराध के असली मुकाम पर

अँगुली रखने से मना करते हैं।

जिनका आधे से ज्यादा शरीर

भेड़ियों ने खा लिया है

वे इस जंगल की सराहना करते हैं -

'भारतवर्ष नदियों का देश है।'

बेशक, यह खयाल ही उनका हत्यारा है।

यह दूसरी बात है कि इस बार

उन्हें पानी ने मारा है।

मगर वे हैं कि असलियत नहीं समझते।

अनाज में छिपे 'उस आदमी' की नीयत

नहीं समझते

जो पूरे समुदाय से  
अपनी गिज़ा वसूल करता है -  
कभी 'गाय' से  
और कभी 'हाय' से

'यह सब कैसे होता है' मैं उन्हें समझाता हूँ  
मैं उन्हें समझाता हूँ -  
वह कौन-सा प्रजातान्त्रिक नुस्खा है  
कि जिस उम्र में  
मेरी माँ का चेहरा  
झुर्रियों की झोली बन गया है  
उसी उम्र की मेरे पड़ोस की महिला  
के चेहरे पर  
मेरी प्रेमिका के चेहरे-सा  
लोच है।

वे चुपचाप सुनते हैं।  
उनकी आँखों में विरक्ति है;  
पछ्तावा है;  
संकोच है  
या क्या है कुछ पता नहीं चलता।  
वे इस कदर पस्त हैं :

कि तटस्थ हैं।  
और मैं सोचने लगता हूँ कि इस देश में  
एकता युद्ध की और दया  
अकाल की पूँजी है।  
क्रान्ति -  
यहाँ के असंग लोगों के लिए  
किसी अबोध बच्चे के -  
हाथों की जूजी है।

## पटकथा

जब मैं बाहर आया  
मेरे हाथों में  
एक कविता थी और दिमाग में  
आँतों का एक्स-रे।  
वह काला धब्बा  
जो कल तक एक शब्द था;  
खून के अँधेरे में  
दवा की शीशी का ट्रेडमार्क  
बन गया था।  
औरतों के लिए गैर-ज़रूरी होने के बाद  
अपनी ऊब का  
दूसरा समाधान ढूँढ़ना ज़रूरी है।  
मैंने सोचा !  
क्योंकि शब्द और स्वाद के बीच  
अपनी भूख को ज़िन्दा रखना  
जीभ और जाँघ के स्थानिक भूगोल की  
वाजिब मजबूरी है।  
मैंने सोचा और संस्कार के  
वर्जित इलाकों में  
अपनी आदतों का शिकार  
होने से पहले ही  
बाहर चला आया।  
बाहर हवा थी  
धूप थी  
घास थी  
मैंन कहा आज्ञादी...  
मुझे अच्छी तरह याद है -  
मैंने यही कहा था  
मेरी नस-नस में बिजली  
दौड़ रही थी  
उत्साह में  
खुद मेरा स्वर

मुझे अजनबी लग रहा था  
मैंने कहा - आ-ज़ा-दी  
और दौड़ता हुआ खेतों की ओर  
गया ! वहाँ कतार के कतार  
अनाज के अँकुए फूट रहे थे  
मैंने कहा - जैसे कसरत करते हुए  
बच्चे। तारों पर  
चिड़ियाँ चहचहा रहीं थीं  
मैंने कहा-काँसे की बजती हुई घण्टियाँ...  
खेत की मेड़ पार करते हुए,  
मैंने एक बैल की पीठ थपथपायी  
सड़क पर जाते हुए आदमी से  
उसका नाम पूछा  
और कहा-बघाई...

घर लौटकर  
मैंने सारी बत्तियाँ जला दीं  
पुरानी तसवीरों को दीवार से  
उतारकर  
उन्हें साफ़ किया  
और फिर उन्हें दीवार पर (उसी जगह)  
टाँग दिया।  
मैंने दरवाज़े के बाहर  
एक पौधा लगाया और कहा-  
वन-महोत्सव...  
और देर तक  
हवा में गरदन उचका-उचकाकर  
लम्बी-लम्बी साँस खींचता रहा  
देर तक महसूस करता रहा-  
कि मेरे भीतर  
वक्त का सामना करने के लिए  
औसतन, जवान खून है  
मगर, मुझे शान्ति चाहिए  
इसलिए खाली दरबे में

एक जोड़ा कबूतर लाकर डाल दिया  
'गूँ... गुटरगूँ... गूँ... गुटरगूँ...'  
और चहकते हुए कहा-  
यही मेरी आस्था है  
यही मेरा कानून है

इस तरह जो था उसे मैंने  
जी भरकर प्यार किया  
और जो नहीं था  
उसका इन्तज़ार किया।  
मैंने इन्तज़ार किया-  
अब कोई बच्चा  
भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा  
अब कोई छत बारिश में  
नहीं टपकेगी।  
अब कोई आदमी कपड़ों की लाचारी में  
अपना नंगा चेहरा नहीं पहनेगा  
अब कोई दवा के अभाव में  
घुट-घुटकर नहीं मरेगा  
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा  
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा  
अब यह ज़मीन अपनी है  
आसमान अपना है  
जैसा पहला हुआ करता था-  
सूर्य, हमारा सपना है  
मैं इन्तज़ार करता रहा...  
इन्तज़ार करता रहा...  
इन्तज़ार करता रहा...  
जनतन्त्र, त्याग, स्वतन्त्रता...  
संस्कृति, शान्ति, मनुष्यता...  
ये सारे शब्द थे  
सुनहरे वादे थे  
खुशफ़हम इरादे थे

सुन्दर थे  
 मौलिक थे  
 मुखर थे  
 मैं सुनता रहा...  
 सुनता रहा...  
 सुनता रहा...  
 मतदान होते रहे  
 मैं अपनी सम्मोहित बुद्धि के नीचे  
 उसी लोकनायक को  
 बार-बार चुनता रहा  
 जिसके पास हर शंका और  
 हर सवाल का  
 एक ही जवाब था  
 यानी कि कोट के बटन-होल में  
 महकता हुआ एक फूल  
 गुलाब का।  
 वह हमें विश्वशान्ति और पंचशील के सूत्र  
 समझाता रहा। मैं खुद को  
 समझाता रहा- 'जो मैं चाहता हूँ -  
 वही होगा। होगा- आज नहीं तो कल  
 मगर, सब कुछ सही होगा।

भीड़ बढ़ती रही।  
 चीराहे चौड़े होते रहे।  
 लोग अपने-अपने हिस्से का अनाज  
 खाकर - निरापद भाव से  
 बच्चे जनते रहे।  
 योजनाएँ चलती रहीं  
 बन्दूकों के कारखानों में  
 जूते बनते रहे।  
 और जब कभी मौसम उतार पर  
 होता था। हमारा संशय  
 हमें कोंचता था। हम उत्तेजित होकर  
 पृष्ठते थे -यह क्या है ?

ऐसा क्यों है ?  
फिर बहसें होती थीं  
शब्दों के जंगल में  
हम एक-दूसरे को काटते थे  
भाषा की खाई को  
जुबान से कम और जूतों से  
ज्यादा पाटते थे  
कभी वह हारता रहा...  
कभी हम जीतते रहे...  
इसी तरह नॉक-शॉक चलती रही  
दिन बीतते रहे...

मगर एक दिन मैं स्तब्ध रह गया।  
मेरा सारा धीरज  
युद्ध की आग से पिघलती हुई बर्फ में  
बह गया।  
मैंने देखा कि मैदानों में  
नदियों की जगह  
मरे हुए साँपों की केंचुलें बिछी हैं  
पेड़ -  
टूटे हुए रेंडार की तरह खड़े हैं  
दूर-दूर तक  
कोई मौसम नहीं है  
लोग -  
घरों के भीतर नंगे हो गये हैं  
और बाहर मुर्दे पड़े हैं  
विधवाएँ तमगा लूट रही हैं  
सधवाएँ मंगल गा रही हैं  
वन-महोत्सव से लौटी हुई कार्यप्रणालियाँ  
अकाल का लंगर चला रही हैं  
जगह-जगह तख्तियाँ लटक रही हैं -  
'यह श्मशान है, यहाँ की तसवीर लेना  
सख्त मना है।'

फिर भी उस उजाड़ में  
 कहीं-कहीं घास का हरा होना  
 कितना डरावना है  
 मैंने अचरज से देखा कि दुनिया का  
 सबसे बड़ा बौद्ध-मठ  
 बारूद का सबसे बड़ा गोदाम है  
 अखबार के मटमैले हाशिये पर  
 लेटे हुए, एक तटस्थ और कोढ़ी देवता का  
 शान्तिवाद, नाम है  
 यह मेरा देश है...  
 यह मेरा देश है...  
 हिमालय से लेकर हिन्द महासागर तक  
 फैला हुआ  
 जली हुई मिट्टी का ढेर है  
 जहाँ हर तीसरी जुबान का मतलब -  
 नफ़रत है।  
 साज़िश है।  
 अन्धेर है।  
 यह मेरा देश है  
 और यह मेरे देश की जनता है  
 जनता क्या है ?  
 एक शब्द...सिर्फ़ एक शब्द है :  
 कुहरा और कीचड़ और काँच से  
 बना हुआ...  
 एक भेड़ है  
 जो दूसरों की ठण्ड के लिए  
 अपनी पीठ पर  
 ऊन की फसल ढो रही है।  
 एक पेड़ है  
 जो ढलान पर  
 हर आती-जाती हवा की जुबान में  
 हॉँSS... हॉँSS करता है  
 क्योंकि अपनी हरियाली से  
 डरता है।



गाँवों के गन्दे पनालों से लेकर  
शहर के शिवालों तक फैली हुई  
'कथाकलि' की एक अमूर्त मुद्रा है  
यह जनता...  
जनतन्त्र में  
उसकी श्रद्धा  
अटूट है  
उसको समझा दिया गया है कि यहाँ  
ऐसा जनतन्त्र है जिसमें  
ज़िन्दा रहने के लिए  
घोड़े और घास को  
एक-जैसी छूट है  
कैसी विडम्बना है  
कैसा झूठ है  
दरअस्ल, अपने यहाँ जनतन्त्र  
एक ऐसा तमाशा है  
जिसकी जान  
मदारी की भाषा है।

हर तरफ धुआँ है  
हर तरफ कुहासा है  
जो दाँतों और दलदलों का दलाल है  
वही देशभक्त है  
अन्धकार में सुरक्षित होने का नाम है -  
तटस्थता। यहाँ  
कायरता के चेहरे पर  
सबसे ज़्यादा रक्त है।  
जिसके पास थाली है  
हर भूखा आदमी  
उसके लिए, सबसे भदी  
गाली है

हर तरफ कुआँ है  
हर तरफ खाई है

यहां, सिर्फ, वह आदमी, देश के करीब है  
जो या तो मूर्ख है  
या फिर गरीब है

मैं सोचता रहा,  
और घूमता रहा -  
टूटे हुए पुलों के नीचे  
वीरान सड़कों पर / आँखों के  
अन्ध रेगिस्तानों में  
फटे हुए पालों की  
अधूरी जल-यात्राओं में  
टूटी हुई चीज़ों के ढेर में  
मैं खोयी हुई आज़ादी का अर्थ  
दूँदता रहा।

अपनी पसलियों के नीचे / अस्पतालों के  
बिस्तारों पर / नुमाइशों में  
बाज़ारों में / गाँवों में  
जंगलों में / पहाड़ों पर  
देश के इस छोर से उस छोर तक  
उसी लोक-चेतना को  
बार-बार टेरता रहा  
जो मुझे दोबारा जी सके  
जो मुझे शान्ति दे और  
मेरे भीतर-बाहर का ज़हर  
खुद पी सके।

-और तभी सुलग उठा पश्चिमी सीमान्त  
...ध्वस्त...ध्वस्त...ध्वान्त...ध्वान्त...  
मैं दोबारा चौंककर खड़ा हो गया  
जो चेहरा आत्महीनता की स्वीकृति में  
कन्धे पर लुढ़क रहा था,  
किसी अनजानाते हुए चाकू की तरह  
खुलकर, कड़ा हो गया...  
अचानक, अपने-आपमें ज़िन्दा होने की  
यह घटना

इस देश की परम्परा की -  
एक बेमिसाल कड़ी थी  
लेकिन इसे साहस मत कहो।  
दरअस्त, यह पुट्टों तक चोट खायी हुई  
गाय की घृणा थी  
(ज़िन्दा रहने की पुरज़ोर कोशिश)  
जो उस आदमखोर की हविस से  
बड़ी थी।

मगर उसके तुरन्त बाद  
मुझे झेलनी पड़ी थी(सबसे बड़ी ट्रेजेडी  
अपने इतिहास की  
जब दुनिया के स्याह और सफेद चेहरों ने  
विस्मय से देखा कि ताशकन्द में  
समझौते की सफेद चादर के नीचे  
एक शान्ति-यात्री की लाश थी  
और अब यह किसी पौराणिक कथा के  
उपसंहार की तरह है कि इस देश में  
रोशनी उन पहाड़ों से आयी थी  
जहाँ मेरे पड़ोसी ने मात  
खायी थी।  
मगर फिर मैं वही चला गया  
अपने जनून के अँधेरे में  
फूहड़ इरादों के हाथों  
छला गया।  
वहाँ बंजर मैदान  
कंकालों की नुमाइश कर रहे थे  
गोदाम अनाज से भरे पड़े थे और लोग  
भूखों मर रहे थे  
मैंने महसूस किया कि मैं वक्त के  
एक शर्मनाक दौर से गुज़र रहा हूँ  
अब ऐसा वक्त आ गया है जब कोई  
किसी का झुलसा हुआ चेहरा नहीं देखता है  
अब न तो कोई किसी का खाली पेट

देखता है, न थरथराती हुई टाँगें  
और न ढला हुआ 'सूर्यहीन कन्धा' देखता है  
हर आदमी, सिर्फ, अपना धन्धा देखता है  
सबने भाईचारा भुला दिया है  
आत्मा की सरलता को मारकर  
मतलब के अँधेरे में (एक राष्ट्रीय मुहावरे की बगल में)  
सुला दिया है।

सहानुभूति और प्यार  
अब ऐसा छलावा है जिसके ज़रिये  
एक आदमी दूसरे को, अकेले -  
अँधेरे में ले जाता है और  
उसकी पीठ में छुरा भोंक देता है  
ठीक उस मोची की तरह जो चौक से  
गुज़रते हुए देहाती को  
प्यार से बुलाता है और मरम्मत के नाम पर  
खर के तल्ले में  
लोहे की तीन दर्जन फुल्लियाँ  
ठोक देता है और उसके नहीं-नहीं के बावजूद  
डपटकर पैसा वसूलता है  
गरज़ यह कि अपराध  
अपने यहाँ एक ऐसा सदाबहार फूल है  
जो आत्मीयता की खाद पर  
लाल-भड़क फूलता है  
मैंने देखा कि इस जनतांत्रिक जंगल में  
हर तरफ हत्याओं के नीचे से निकलते हैं  
हरे-हरे हाथ, और पेड़ों पर  
पत्तों की जुबान बनकर लटक जाते हैं  
वे ऐसी भाषा बोलते हैं जिसे सुनकर  
नागरिकता की गोधूलि में  
घर लौटते हुए मुसाफिर  
अपना रास्ता भटक जाते हैं

उन्होंने किसी चीज़ को  
सही जगह नहीं रहने दिया है

न संज्ञा  
 न विशेषण  
 न सर्वनाम  
 एक समूचा और सही वाक्य  
 टूटकर  
 'बि ख र' गया है  
 उनका व्याकरण इस देश की  
 शिराओं में छिपे हुए कारकों का  
 हत्यारा है  
 उनकी सरल पकड़ के नीचे  
 भूख से मरा हुआ आदमी  
 इस मौसम का  
 सबसे दिलचस्प विज्ञापन है और गाय  
 सबसे सटीक नारा है  
 वे खेतों में भूख और शहरों में  
 अफवाहों के पुलिन्दे फेंकते हैं  
 देश और धर्म और नैतिकता की  
 दुहाई देकर  
 कुछ लोगों की सुविधा  
 दूसरों की 'हाय' पर सेंकते हैं  
 वे जिसकी पीठ ठोकते हैं -  
 उसके रीढ़ की हड्डी गायब हो जाती है  
 वे मुस्कराते हैं और  
 दूसरे की आँख में झपटती हुई प्रतिहिंसा  
 करवट बदलकर  
 सो जाती है  
 मैं देखता रहा...  
 देखता रहा...  
 हर तरफ ऊब थी  
 संशय था  
 नफरत थी  
 मगर हर आदमी अपनी ज़रूरतों के आगे  
 असहाय था। उसमें  
 सारी चीज़ों को नये सिरे से बदलने की

बेचैनी थी, रोष था;  
लेकिन उसका गुस्सा  
एक तथ्यहीन मिश्रण था :  
आग और आँसू और हाय का।

इस तरह एक दिन -  
जब मैं घूमते-घूमते थक चुका था  
मेरे खून में एक काली आँधी -  
दौड़ लगा रही थी  
मेरी असफलताओं में सोये हुए  
वहशी इरादों को  
झकझोरकर जगा रही थी  
अचानक, नींद की असंख्य पतों में  
डूबते हुए मैंने देखा  
कि मेरी उलझनों के अँधेरे में  
एक हम-शक्ल खड़ा है :  
मैंने उससे पूछा - 'तुम कौन हो ?  
यहाँ क्यों आये हो ?  
तुम्हें क्या हुआ है ?'  
'तुमने पहचाना नहीं- मैं हिन्दुस्तान हूँ  
हाँ-मैं हिन्दुस्तान हूँ,  
वह हँसता है - ऐसी हँसी कि दिल  
दहल जाता है  
कलेजा मुँह को आता है  
और मैं हैरान हूँ  
'यहाँ आओ  
मेरे पास आओ  
मुझे छुओ।  
मुझे जियो। मेरे साथ चलो  
मेरा यकीन करो। इस दलदल से  
बाहर निकलो !  
सुनो !  
तुम चाहे जिसे चुनो  
मगर इसे नहीं। इसे बदलो।

मुझे लगा- आवाज़  
 जैसे किसी जलते हुए कुर्रुँ से  
 आ रही है।  
 एक अजीब-सी प्यारभरी गुर्राहट  
 जैसे कोई मादा भेड़िया  
 अपने छौने को दूध पिला रही है और  
 साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है  
 मेरा सारा जिस्म थरथरा रहा था  
 उसकी आवाज़ में  
 असंख्य नरकों की घृणा भरी थी  
 वह एक-एक शब्द चबा-चबाकर  
 बोल रहा था। मगर उसकी आँख  
 गुस्से में भी हरी थी  
 वह कह रहा था -  
 'तुम्हारी आँखों के चकनाचूर आईनों में  
 वक्त की बदरंग छायाएँ उलटी कर रही हैं  
 और तुम पेड़ों की छाल गिनकर •  
 भविष्य का कार्यक्रम तैयार कर रहे हो  
 तुम एक ऐसी ज़िन्दगी से गुज़र रहे हो  
 जिसमें न कोई तुक है  
 न सुख है  
 तुम अपनी शापित परछाई से टकराकर  
 रास्ते में रुक गये हो  
 तुम जो हर चीज़  
 अपने दाँतों के नीचे  
 खाने के आदी हो  
 चाहे वह सपना हो अथवा आज़ादी हो  
 अचानक, इस तरह, क्यों चूक गये हो  
 वह क्या है जिसने तुम्हें  
 बर्बरी के सामने अदब से  
 रहना सिखलाया है ?  
 क्या यह विश्वास की कमी है  
 जो तुम्हारी भलमनसाहत बन गयी है  
 या कि शर्म

अब तुम्हारी सहूलियत बन गयी है  
 नहीं - सरलता की तरह इस तरह  
 मत दौड़ो  
 उसमें भूख और मन्दिर की रोशनी का  
 रिश्ता है। वह बनिये की पूँजी का  
 आधार है  
 मैं बार-बार कहता हूँ कि इस उलझी हुई  
 दुनिया में  
 आसानी से समझ में आनेवाली चीज़  
 सिर्फ़ दीवार है।  
 और यह दीवार अब तुम्हारी आदत का  
 हिस्सा बन गयी है  
 इसे झटककर अलग करो  
 अपनी आदतों में  
 फूलों की जगह पत्थर भरो  
 मासूमियत के हर तकाजे को  
 ठोकर मार दो  
 अब वक्त आ गया है कि तुम उठो  
 और अपनी ऊँच को आकार दो।  
 'सुनो !  
 आज मैं तुम्हें वह सत्य बतलाता हूँ  
 जिसके आगे हर सचाई  
 छोटी है। इस दुनिया में  
 भूखे आदमी का सबसे बड़ा तर्क  
 रोटी है।  
 मगर तुम्हारी भूख और भाषा में  
 यदि सही दूरी नहीं है  
 तो तुम अपने-आपको आदमी मत कहो  
 क्योंकि पशुता -  
 सिर्फ़ पूँछ होने की मज़बूरी नहीं है  
 वह आदमी को भी वहीं ले जाती है  
 जहाँ भूख  
 सबसे पहले भाषा को खाती है  
 वक्त सिर्फ़ उसका चेहरा बिगाड़ता है



जो अपने चेहरे की राख  
दूसरों की रूमाल से झाड़ता है  
जो अपना हाथ  
मैला होने से डरता है  
वह एक नहीं ग्यारह कायरों की  
मौत मरता है  
और सुनो ! नफ़रत और रोशनी  
सिर्फ़ उसके हिस्से की चीज़ है  
जिसे जंगल के हाशिये पर  
जीने की तमीज़ है  
इसलिए उठो और अपने भीतर  
सोये हुए जंगल को  
आवाज़ दो  
उसे जगाओ और देखो -  
कि तुम अकेले नहीं हो  
और न किसी के मुहताज हो  
लाखों हैं जो तुम्हारे इन्तज़ार में खड़े हैं  
वहाँ चलो। उनका साथ दो  
और इस तिलस्म का जादू उतारने में  
उनकी मदद करो और साबित करो  
कि वे सारी चीज़ें अच्छी हो गयी हैं  
जिनमें तुम शरीक नहीं हो...'

मैं पूरी तत्परता से उसे सुन रहा था  
एक के बाद दूसरा  
दूसरे के बाद तीसरा  
तीसरे के बाद चौथा  
चौथे के बाद पाँचवाँ...  
यानी कि एक के बाद दूसरा विकल्प  
चुन रहा था  
मगर मैं हिचक रहा था  
क्योंकि मेरे पास  
कुल जमा थोड़ी सुविधाएँ थीं  
जो मेरी सीमाएँ थीं

यद्यपि यह सही है कि मैं  
 कोई ठण्डा आदमी नहीं हूँ  
 मुझमें भी आग है -  
 मगर वह  
 भभककर बाहर नहीं आती  
 क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआ  
 एक 'पूँजीवादी' दिमाग है  
 जो परिवर्तन तो चाहता है  
 मगर आहिस्ता-आहिस्ता  
 कुछ इस तरह की चीज़ों की शालीनता  
 बनी रहे।  
 कुछ इस तरह की काँख भी ढकी रहे  
 और विरोध में उठे हुए हाथ की  
 मुट्ठी भी तनी रहे...  
 और यही वजह है कि बात  
 फँलने की हद तक  
 आते-आते रुक जाती है  
 क्योंकि हर बार  
 चन्द टुच्ची सुविधाओं के लालच के सामने  
 अभियोग की भाषा चुक जाती है

मैं खुद को कुरेद रहा था  
 अपने बहाने उन तमाम लोगों की असफलताओं को  
 सोच रहा था जो मेरे नज़दीक थे।  
 इस तरह साबुत और सीधे विचारों पर  
 जमी हुई काई और उगी हुई घास को  
 खरोंच रहा था, नोंच रहा था  
 पूरे समाज की सीवन उधेड़ते हुए  
 मैंने आदमी के भीतर की मैल  
 देख ली थी। मेरा सिर  
 भिन्ना रहा था  
 मेरा हृदय भारी था  
 मेरा शरीर इस बुरी तरह थका था कि मैं  
 अपनी तरफ़ घूरते हुए उस चेहरे से

थोड़ी देर के लिए  
 बचना चाह रहा था  
 जो अपनी पैनी आँखों से  
 मेरी बेबसी और मेरा उथलापन  
 थाह रहा था  
 प्रस्तावित भीड़ में  
 शरीक भीड़ में  
 शरीक होने के लिए  
 अभी मैंने कोई निर्णय नहीं लिया था  
 अचानक, उसने मेरा हाथ पकड़कर  
 खींच लिया और मैं  
 जेब में जूतों का टोकन और दिमाग में  
 ताज़े अखबार की कतरन लिये हुए  
 घड़ाम से -  
 चौथे आम चुनाव की सीढ़ियों से फिसलकर  
 मत-पेटियों के  
 गड़गच्च अँधेरे में गिर पड़ा  
 नींद के भीतर यह दूसरी नींद है  
 और मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है  
 सिर्फ एक शोर है  
 जिसमें कानों के पर्दे फटे जा रहे हैं  
 शासन सुरक्षा रोज़गार शिक्षा...  
 राष्ट्रधर्म देशहित हिंसा अहिंसा...  
 सैन्यशक्ति देशभक्ति आज़ादी वीसा...  
 वाद बिरादरी भूख भीख भाषा...  
 शान्ति क्रान्ति शीतयुद्ध एटम बम सीमा...  
 एकता सीढ़ियाँ साहित्यिक पीढ़ियाँ निराशा...  
 झॉय-झॉय, खॉय-खॉय, हाय-हा, साँय-साँय..  
 मैंने कानों में टूँस ली हैं अँगुलियाँ  
 और अँधेरे में गाड़ दी है।  
 आँखों की रोशनी।  
 सब-कुछ अब धीरे-धीरे खुलने लगा है  
 मत-वर्षा के इस दादुर-शोर में  
 मैंने देखा हर तरफ

रंग-बिरंगे झण्डे फहरा रहे हैं  
 गिरगिट की तरह रंग बदलते हुए  
 गुट से गुट टकरा रहे हैं  
 वे एक-दूसरे से दाँता-किलकिल कर रहे हैं  
 एक-दूसरे को दुर-दुर बिल-बिल कर रहे हैं  
 हर तरफ तरह-तरह के जन्तु हैं  
 श्रीमान् किन्तु हैं  
 मिस्टर परन्तु हैं  
 कुछ रोगी हैं  
 कुछ भोगी हैं  
 कुछ हिंजड़े हैं  
 कछ जोगी हैं  
 तिजोरियों के  
 प्रशिक्षित दलाल हैं  
 आँखों के अन्धे हैं  
 घर के कंगाल हैं  
 गूँगे हैं  
 बहरे हैं  
 उथले हैं, गहरे हैं

गिरते हुए लोग हैं  
 अकड़ते हुए लोग हैं  
 भागते हुए लोग हैं  
 पकड़ते हुए लोग हैं  
 गरज़ यह कि हर तरह के लोग हैं  
 एक-दूसरे से नफ़रत करते हुए वे  
 इस बात पर सहमत हैं कि इस देश में  
 असंख्य रोग हैं  
 और उनका एकमात्र इलाज -  
 चुनाव है।  
 लेकिन मुझे लगा कि एक विशाल दलदल के किनारे  
 बहुत बड़ा अधमरा पशु पड़ा हुआ है  
 उसकी नाभि में एक सड़ा हुआ घाव है  
 जिससे लगातार-भयानक बदबूदार मवाद

बह रहा हैं

उसमें जाति और धर्म और सम्प्रदाय और  
पेशा और पूँजी के असंख्य कीड़े  
किलबिला रहे हैं और अन्धकार में  
डूबी हुई पृथ्वी  
(पता नहीं किस अनहोनी की प्रतीक्षा में)  
इस भीषण सङ्घर्ष को चुपचाप सह रही है  
मगर आपस में नफ़रत करते हुए वे लोग  
इस बात पर सहमत हैं कि  
'चुनाव' ही सही इलाज है  
क्योंकि बुरे और बुरे के बीच से  
किसी हद तक 'कम से कम बुरे को' चुनते हुए  
न उन्हें मलाल है, न भय है  
न लाज है  
दरअस्त, उन्हें एक मौका मिला है  
और इसी बहाने  
वे अपने पड़ोसी को पराजित कर रहे हैं  
मैंने देखा कि हर तरफ  
मूढ़ता की हरी-हरी घास लहरा रही हैं  
जिसे कुछ जंगली पशु

खूँद रहे हैं

लीद रहे हैं

चर रहे हैं

मैंने ऊब और गुस्से को

गलत मुहश् के नीचे से गुज़रते हुए देखा

मैंने अहिंसा को

एक सत्कारुद्ध शब्द का गला काटते हुए देखा

मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेबें

भरते हुए देखा

मैंने विवेक को

चापलूसों के तलवे चाटते हुए देखा...

मैं यह सब देख ही रहा था कि एक नया रेला आया -

उन्मत्त लोगों का बर्बर जुलूस। वे किसी आदमी

को हाथों पर गठरी की तरह उछाल रहे थे  
 उसे एक-दूसरे से छीन रहे थे। उसे घसीट रहे थे।  
 चूम रहे थे। पीट रहे थे। गालियाँ दे रहे थे।  
 गले से लगा रहे थे। उसकी प्रशंसा के गीत  
 गा रहे थे। उसपर अनगिनत झण्डे फहरा रहे थे।  
 उसकी जीभ बाहर लटक रही थी। उसकी आँखें बन्द  
 थीं। उसका चेहरा खून और आँसू से तर था। 'मूर्खों !  
 यह क्या कर रहे हो ?' मैं चिल्लाया। और तभी किसी  
 ने उसे मेरी ओर उछाल दिया। अरे ! यह कैसे हुआ ?  
 मैं हतप्रभ-सा खड़ा था  
 और मेरा हमशक्ल  
 मेरे पैरों के पास  
 मूर्च्छित-सा  
 पड़ा था -

दुख और भय से एक झुरझुरी लेकर  
 मैं उस पर झुक गया  
 किन्तु बीच ही में रुक गया  
 उसका हाथ ऊपर उठा था  
 खून और आँसू से तर चेहरा  
 मुस्कराया था। उसकी आँखों का हरापन  
 उसकी आवाज़ में उतर आया था -  
 'दुखी मत हो। यही मेरी नियति है।  
 मैं हिन्दुस्तान हूँ। जब भी मैंने  
 उन्हें उजाले से जोड़ा है  
 उन्होंने मुझे इसी तरह अपमानित किया है  
 इसी तरह तोड़ा है  
 मगर समय गवाह है  
 कि मेरी बेवैनी के आगे भी राह है।'

मैंने सुना। वह आहिस्ता-आहिस्ता कह रहा है  
 जैसे किसी जले हुए जंगल में  
 पानी का एक ठण्डा सोता बह रहा है  
 घास की ताज़गी-भरी  
 ऐसी आवाज़ है

जो न किसी से खुश है, न नाराज़ है।  
 'भूख ने उन्हें जानवर कर दिया है  
 संशय ने उन्हें आग्रहों से भर दिया है  
 फिर भी वे अपने हैं...  
 अपने हैं...  
 अपने हैं...  
 जीवित भविष्य के सुन्दरतम सपने हैं  
 नहीं - यह मेरे लिए दुखी होने का समय  
 नहीं है। अपने लोगों की घृणा के  
 इस महोत्सव में  
 मैं शापित निश्चय हूँ  
 मुझे किसी से भय नहीं है।  
 'तुम मेरी चिन्ता न करो। उनके साथ  
 चलो। इससे पहले कि वे  
 गलत हाथों के हथियार हों  
 इससे पहले कि वे नारों और इश्तिहारों से  
 काले बाज़ार हों  
 उनसे मिलो। उन्हें बदलो।  
 नहीं - भीड़ के खिलाफ रुकना  
 एक खूनी विचार है  
 क्योंकि हर ठहरा हुआ आदमी  
 इस हिंसक भीड़ का  
 अन्धा शिकार है।  
 तुम मेरी चिन्ता मत करो।  
 मैं हर वक्त सिर्फ़ एक चेहरा नहीं हूँ  
 जहाँ वर्तमान  
 अपने शिकारी कुत्ते उतारता है  
 अक्सर मैं मिट्टी का हरकत करता हुआ  
 वह टुकड़ा हूँ  
 जो आदमी की शिराओं में  
 बहते हुए खून को  
 उसके सही नाम से पुकारता है  
 इसलिए मैं कहता हूँ जाओ, और  
 देखो कि वे लोग...'

मैं कुछ कहना ही चाहता था कि एक धक्के ने  
 मुझे दूर फेंक दिया। इससे पहले कि मैं गिरता  
 किन्हीं मज़बूत हाथों ने मुझे टेक लिया।  
 अचानक भीड़ से निकलकर एक प्रशिक्षित दलाल  
 मेरी देह में समा गया। दूसरा मेरे हाथों में  
 एक पर्वी थमा गया। तीसरे ने मुझे एक मुहर देकर  
 पर्दे के पीछे ढकेल दिया।  
 मय और अनिश्चय के दुहरे दबाव में  
 पता नहीं कब और कैसे और कहाँ -  
 कितने नामों और चिन्हों और शब्दों को  
 काटते हुए मैं चीख पड़ा -  
 'हत्यारा ! हत्यारा !! हत्यारा !!!'

[मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है। मैंने यह  
 किसको कहा था। शायद अपने-आपको  
 शायद उस हमशक्ल को (जिसने खुद को  
 हिन्दुस्तान कहा था) शायद उस दलाल को  
 मगर मुझे ठीक-ठीक याद नहीं है]  
 मेरी नींद टूट चुकी थी  
 मेरा पूरा जिस्म पसीने में  
 सराबोर था। मेरे आसपास से  
 तरह-तरह के लोग गुज़र रहे थे।  
 हर तरफ हलचल थी, शोर था।  
 कुछ लोग कह रहे थे कि इन दिनों  
 एक खास परिवर्तन हुआ है  
 जनता जगी है। सब  
 प्रभु की माया है  
 एक लम्बे इन्तज़ार के बाद  
 चीज़ों का असली चेहरा  
 उजाले में आया है  
 और मैं चुपचाप सुनता हूँ  
 हूँ शायद -  
 मैंने भी अपने भीतर  
 (कहीं बहुत गहरे)



'कुछ जलता हुआ-सा' हुआ है  
लेकिन मैं जानता हूँ कि जो कुछ हुआ है  
नींद में हुआ है  
और तब से आज तक  
नींद और नींद के बीच का जंगल काटते हुए  
मैंने कई रातें जागकर गुज़ार दी हैं  
हफ्तो पर हफ्तो तह किये हैं  
अपनी परेशानी के  
निर्मम अकेले और बेहद अनमने क्षण  
जिये हैं।  
और हर बार मुझे लगा है कि कहीं  
कोई खास फ़र्क नहीं है  
ज़िन्दगी उसी पुराने ढर्रे पर चल रही है  
जिसके पीछे कोई तर्क नहीं है।

हाँ, यह सही है कि इन दिनों  
कुछ अज़ियाँ मंज़ूर हुई हैं  
कुछ तबादले हुए हैं  
कल तक जो नहले थे  
आज  
दहले हुए हैं

हाँ, यह सही कि इन दिनों  
मन्त्री जब प्रजा के सामने आता है  
तो पहले से  
कुछ ज़्यादा मुस्कराता है  
नये-नये वादे करता है  
और यह सब सिर्फ़ घास के  
सामने होने की मजबूरी है  
वर्ना उस भलेमानुस को  
यह भी पता नहीं है कि विधानसभा भवन  
और अपने निजी बिस्तर के बीच  
कितने जूतों की दूरी है।

हाँ यह सही है कि इन दिनों - चीज़ों के  
भाव कुछ चढ़ गये हैं। अख़बारों के

शीर्षक दिलचस्प हैं, नये हैं।  
 मन्दी की मार से  
 पट पड़ी हुई चीजें, बाज़ार में  
 सहसा उछल गयी हैं  
 हाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं  
 सिर्फ, टोपियाँ बदल गयी हैं और -  
 सच्चे मतभेद के अभाव में  
 लोग उछल-उछलकर  
 अपनी जगहें बदल रहे हैं  
 चढ़ी हुई नदी में  
 भरी हुई नाव में  
 हर तरफ, विरोधी विचारों का  
 दलदल है  
 सतहों पर हलचल है  
 नये-नये नारे हैं  
 भाषण में जोश है  
 पानी ही पानी है  
 पर  
 की  
 च  
 ड  
 खामोश है

मैं रोज़ देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का  
 एक पुर्जा गरम होकर  
 अलग छिटक गया है और  
 ठण्डा होते ही  
 फिर कुर्सी से चिपक गया है  
 उसमें न हया है  
 न दया है

नहीं - अपना कोई हमदर्द  
 यहाँ नहीं है। मैंने एक-एक को  
 परख लिया है।  
 मैंने हरेक को आवाज़ दी है

हरेक का दरवाज़ा खटखटाया है  
मगर बेकार...मैंने जिसकी पूँछ  
उठायी है उसको मादा  
पाया है।

वे सब के सब तिजोरियों के  
दुभाषिये हैं।  
वे वकील हैं। वैज्ञानिक हैं।  
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक  
हैं। लेखक हैं। कवि हैं। कलाकार हैं।  
यानी कि -

कानून की भाषा बोलता हुआ  
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।

भूख और भूख की आड़ में  
चबायी गयी चीज़ों का अक्स  
उनके दाँतों पर ढूँढ़ना  
बेकार है। समाजवाद  
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का  
एक आधुनिक मुहावरा है।  
मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद  
मालगोदाम में लटकती हुई  
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है  
और उनमें बालू और पानी भरा है।

यहाँ जनता एक गाड़ी है  
एक ही संविधान के नीचे  
भूख से रियाती हुई फ़ैली हथेली का नाम  
'दया' है  
और भूख में  
तनी हुई मुट्ठी का नाम  
नक्सलबाड़ी है

मुझसे कहा गया कि संसद  
देश की धड़कन को  
प्रतिबिम्बित करनेवाला दर्पण है  
जनता को

जनता के विचारों का  
 नैतिक समर्पण है  
 लेकिन क्या यह सच है ?  
 या यह सच है कि  
 अपने यहाँ संसद -  
 तेली की वह घानी है  
 जिसमें आधा तेल है  
 और आधा पानी है  
 और यदि यह सच नहीं है  
 तो वहाँ एक ईमानदार आदमी को  
 अपनी ईमानदारी का  
 मलाल क्यों है ?  
 जिसने सत्य कह दिया है  
 उसका बुरा हाल-क्यों है?

मैं अक्सर अपने-आपसे सवाल  
 करता हूँ जिसका मेरे पास  
 कोई उत्तर नहीं है  
 और आज तक -  
 नींद और नींद के बीच का जंगल काटते हुए  
 मैंने कई रातें जागकर  
 गुज़ार दी हैं।  
 हफ्तों पर हफ्तों तह किये हैं। ऊब के  
 निर्मम अकेले और बेहद अनमने क्षण  
 जिये हैं।  
 मेरे सामने वही विरपरिचित अन्धकार है  
 संशय की अनिश्चयग्रस्त ठण्डी मुद्राएँ हैं  
 हर तरफ  
 शब्दवेधी सन्नाटा है।  
 दरिद्र की व्यथा की तरह  
 उचाट और कुँथता हुआ। घृणा में  
 डूबा हुआ सारा का सारा देश  
 पहले की ही तरह आज भी  
 मेरा कारगार है।

## रोटी और संसद

एक आदमी  
रोटी बेलता है  
एक आदमी रोटी खाता है  
एक तीसरा आदमी भी है  
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है।  
वह सिर्फ रोटी से खेलता है  
मैं पूछता हूँ -  
'यह तीसरा आदमी कौन है ?'  
मेरे देश की संसद मीन है।

कविताओं के बारे में

साठोत्तरी हिन्दी कविता के प्रतिनिधि कवि धूमिल की आठ कविताएँ पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं। ये कविताएँ निम्नलिखित हैं - 'नक्सलवाड़ी', 'मोचीराम', 'राज कमल चौधरी', 'कविता', 'अकाल दर्शन', 'पटकथा', 'रोटी और संसद' तथा 'मुनासिब कार्रवाई'। इन कविताओं में से अधिकांश कविताएँ कवि की प्रसिद्ध तथा प्रथम काव्यकृति 'संसद से सड़क तक' से ली गई हैं। 'संसद से सड़क तक' काव्य कृति में 1966 से 1970 तक की कवि की कविताएँ संकलित हैं। यह काल धूमिल के रचनात्मक जीवन का श्रेष्ठ काल था।

'मुनासिब कार्रवाई' कविता में कवि जीवन के संदर्भों से स्वायत्त होती रचना के प्रति आक्रोश प्रकट करता है। वस्तुतः कला जीवन के द्वारा विकसित होती है। जीवन का एक सामाजिक संदर्भ भी होता है। इससे अलग कविता की परिकल्पना भी नहीं की जा सकती है। जीवन से अलग होने पर कविता में शब्दों का आडंबर मात्र रह जाता है। कविता में जीवन की प्रामाणिक अनुभूति अपनी अभिव्यंजना के लिए नए मार्गों की तलाश कर लेती है। कविता व्यवस्था के प्रतिरोध में खड़ी होती है। व्यवस्था के शोषणतंत्र को पहचानने पर ही कविता में वास्तविक अनुभूति को प्रकट किया जा सकता है। वस्तुतः कविता को मानवीय बनाने के लिए उन शोषणकारी तंत्रों से लड़ने की भी ज़रूरत है। पूँजीवादी समाज की प्राथमिक कोशिश यह है कि व्यक्ति को अकेला किया जाए। मनुष्य के अकेले होने पर उसमें प्रतिरोध की क्षमता घटती है।

'नक्सलवाड़ी' कविता में कवि एक नये प्रजातंत्र को रचने का प्रयत्न करता है। समकालीन समय में प्रजातंत्र के नाम पर जनता को मूर्ख बनाया जाता है। इसी के खिलाफ नक्सलवादी आंदोलन उभरा था। नक्सलवाद की जंग भूख और बेरोजगारी के विरुद्ध थी। नक्सलवाद वामपंथी विचारधारा से उपजा हुआ आंदोलन था, परन्तु वह दलगत राजनीति के प्रतिरोध में अपना स्वर अभिव्यक्त कर रहा था। वस्तुतः विपक्ष और सत्तापक्ष दोनों शासन के हथियार बन गए थे। संसद में जनता का पक्षधर कोई नहीं बच रहा था। सुविधा और उपभोग राजनीति का सच बन गया था। स्वतंत्रता के समय में देशप्रेम के लिए अब जगह नहीं थी। सड़क जो मानवीय आवेश को सामूहिक स्वर देती थी, अब वह समझौते का प्रतीक बन गयी थी। राजनेता अपने शब्दों में भाईचारा और ईमानदारी के प्रति विश्वास प्रकट करते लेकिन अंदर ही अंदर वास्तविकता से लड़ने वाली मानवीय शक्तियों को तोड़ने का प्रयत्न करते। नक्सलवाद के प्रति कवि की गहरी सहानुभूति है।

'मोचीराम' कविता में कवि की सहानुभूति शोषितों और दलितों के प्रति है। वस्तुतः समाज में मनुष्य की पहचान उसके पद, प्रतिष्ठा और पेशे से होती है। ऐसी सामाजिक संरचना में मनुष्य की मौलिकता नष्ट होती है। ऐसे समाज में मनुष्य पर टाँके पड़ते रहते हैं। जूते

आडंबर के प्रतीक बन जाते हैं जो मनुष्य को ऊपर से पहचानने में मदद करते हैं। मोचीराम में आत्मपीड़ा है। यह पीड़ा उसकी अपनी सामाजिक दशा से उपजी है। मनुष्य होने के पीछे जो सामान्य मानवीय मनोभाव हैं उसे छोड़कर हम मानव नहीं हो सकते हैं। वस्तुतः भाषा शब्द और अनुभव हर मनुष्य में होते हैं। उनसे सीखने की प्रक्रिया हर मनुष्य में अलग-अलग तरह की होती है। कवि चुप और चीख के पीछे की मजबूरियों को प्रस्तावित करता है।

राजकमल चौधरी धूमिल के समकालिक कवि थे। एक कवि अपने समकालीनों को किन नज़रों से देखता है, इस कविता में इस बिंदु को गहराई से देखा जा सकता है। वस्तुतः राजकमल चौधरी जीवन के सत्य को पाने के लिए उन रास्तों पर भी चले जिसे सभ्य समाज में वर्जित माना जाता है। राजकमल में मानवीय मनोभाव के आदिम रूप को समझने की बेचैनी थी। इस पीड़ा की अभिव्यक्ति के लिए वे लगातार समाज से जुझते रहे। उनके यहाँ ज़िदगी और कविता के बीच अंतराल नहीं है। वे जीवन की नंगी वास्तविकताओं से मुँह नहीं मोड़ते हैं। इससे उनकी कविता में आत्मविश्वास की गहरी संभावना जगती है। धूमिल राजकमल की इस मौलिकता के प्रति आकर्षित हैं। वस्तुतः दुनिया के व्याकरण में राजकमल फिट नहीं होते थे। लेकिन उनकी कविता समृद्ध मानवीय अनुभवों की साक्षी है। धूमिल राजकमल की सामाजिक नैतिकता से परे उनमें छिपी अखंड और आदिम मानवीयता की शक्ति को उभारने का प्रयत्न करते हैं।

'कविता' धूमिल की बहुत ही छोटी कविता है। इस कविता में कवि संवेदना और अभिव्यंजना के संकटों की पहचान करता है। शब्दों की खोती हुई ताकत के कारण कविता रचने का कार्य कठिन होता जा रहा है। भाषा और मनोभाव की जिस पवित्र आत्मीयता से कविता रची जाती है, वे संबंध सूत्र जीवन से लगातार टूट रहे हैं। भाषा और अर्थ का आपसी संबंध सामाजिक जीवन की आधारशिला पर टिका होता है। सामाजिक जीवन में व्यक्ति अकेला होता जा रहा है, इसलिए कविता भी संक्षिप्त एकालाप बनकर रह गई है। उसमें बौखलाए हुए आदमी का आक्रोश है लेकिन एक प्रकार की विवशता से वह ग्रस्त है। 'अकाल दर्शन' कविता में कवि प्रजातांत्रिक व्यवस्था के नाम पर चल रहे शोषण का पर्दाफाश करता है। वह भूख के लिए व्यवस्था को जिम्मेदार मानता है। शासन तंत्र की वास्तविकता प्रत्यक्ष रूप में पकड़ में नहीं आती है। नये-नये नारे गढ़ कर शासन को बरकरार रखने का प्रयत्न होता रहा है। कविता के अंत में कवि जिस मार्मिक प्रश्न को रखता है उससे शोषक और शोषित के बीच का अंतर स्पष्ट हो जाता है। 'रोटी और संसद' कविता में देश की राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। राजनीतिक व्यवस्था जनता की रोटी से खेलती है। रोटी जीने की प्राथमिक ज़रूरत है। गंदी राजनीति जनता की इस मूलभूत ज़रूरत को भी नजरंदाज करती है।

'पटकथा' कविता आत्मपरक ढंग से शुरू होती है। कविता का ढाँचा राजनीतिक है। कविता का आरंभ आज़ादी के मोह और आकर्षण से शुरू होता है। आज़ादी से पैदा होने वाले उत्साह का वर्णन है। भावी जीवन के प्रति एक स्वप्न और उमंग है। जनतंत्र और स्वतंत्रता के प्रति आस्था है। स्वातंत्र्योत्तर यथार्थ से मोहभंग की स्थिति पैदा होती है। चीनी युद्ध ने विश्वशांति और पंचशील के सिद्धान्त को निरर्थक साबित कर दिया। इस स्थान पर कविता में नफरत, साजिश और अंधेर को कवि ने बड़ी बारीकी से दिखाया है। कविता में हर तरफ से दिशाहीनता का संकेत मिलता है। शोषण का चक्र चलता है और दलालों की लूट मचती है। कालाबाज़ारी से जनता तबाह होती है। कवि भारत के जनतंत्र का असली चेहरा पाठक के सामने रखता है। कवि की यह चिंता है कि जनता इन चीजों को महसूस करती है, लेकिन उसका प्रतिरोध नहीं करती है। जनता में निरर्थक ऊब और संशय व्याप्त है। कविता में एक फंतासी की परिकल्पना है। हिंदुस्तान कवि को नींद में मिलता है। हिंदुस्तान वस्तुस्थिति में परिवर्तन की माँग करता है। वह राष्ट्रीय जीवन में संरचनात्मक बदलाव के लिए लोगों को उत्तेजित करता है। उसके बाद कविता में पुनः लोगों की भीड़ इकट्ठी होती है और राजनीतिक क्रूरता का बयान मिलता है। कविता के अंतिम खंड में नैतिकता के हास की पीड़ा है और यथास्थिति के प्रति विक्षोभ है। कवि अपना तर्क सत्ता परिवर्तन के पक्ष में नहीं व्यवस्था परिवर्तन के पक्ष में रखना चाहता है।

धूमिल की कविता में भाषा का स्रोत गाँव है। उनकी कविता में एक विशेष प्रकार का भ्रमसपन है। उन्होंने वर्जित शब्दों को भी कविता में स्थान दिया है। इन वर्जित शब्दों के माध्यम से वे भाषा के आक्रामक तेवर को अभिव्यक्त करते हैं। उनकी काव्य भाषा में कचहरी और जासूसी उपन्यास की शब्दावली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में मिलता है। **मुनासिब कार्रवाई** कविता में सिनाख्त, खुफिया तनाव और वकील का लबार चोंगा जैसे शब्दों का प्रयोग इस बात का प्रमाण है। धूमिल ने नई कविता के दुरूह बिंबों के स्थान पर कविता में अर्थ को अधिक महत्व दिया है। जो बिंब उन्होंने रचे हैं, वे सीधे लोकजीवन से आए हैं। उनमें ताज़गी और अभिव्यक्ति की सामर्थ्य है। उनकी कविता में गद्यात्मकता है जो चिंतन से उपजी हुई है। इसके साथ-साथ तुकों का वे सार्थक प्रयोग करते हैं। धूमिल की कविता की शैली में भाषण की वक्तृत्व शैली का गुण मिलता है। 'पटकथा' कविता भाषण की शैली में तनाव और वेग के साथ आगे बढ़ती है।

धूमिल मुख्य रूप से समकालीन राजनीति और समकालीन समाज से अपनी कविता की विषयवस्तु चुनते हैं। कविता में जिस बौखलाहट को उन्होंने अभिव्यक्त किया है, उसमें सामान्य भारतीय का अनुभव है। यह सामान्य अनुभव ही उन्हें जनता का कवि बनाता है। नैतिकता के हास ने शब्दों के वजन को हल्का बनाया, इस बात की गहरी पीड़ा उनकी कविता में व्याप्त है। इसका असर काव्य-भाषा पर भी हुआ इसकी विलक्षण पहचान उनकी



कविता में मौजूद है। कविता में भाषा और अभिव्यक्ति के गतिरोध से वे लगातार जूझते हैं। आंचलिकता और ग्रामीण संस्कार धूमिल के काव्य में फैशन की तरह प्रयुक्त नहीं हुए हैं। ग्रामीण संस्कार उनकी भाषा बिंब और संवेदना को ताज़गी देते हैं।

### व्याख्या

सुनो! आज मैं तुम्हें वह सत्य .....जिनमें तुम शरीक नहीं हो .....

धूमिल की कविता में व्यवस्था के प्रति विक्षोभ है। उनकी कविता जनतंत्र, संसद, संविधान और प्रजातंत्र के खोखलेपन को वास्तविक अर्थ में पाठक के सामने उपस्थित करती है। पटकथा धूमिल की लंबी कविता है। इस कविता में कवि देश की राजनीतिक असलियत को आक्रोश के साथ वर्णित करता है। इस कविता में फंतासी का प्रयोग है। कवि की नींद में हिंदुस्तान से भेंट होती है। हिंदुस्तान जनता में वर्तमान व्यवस्था के प्रति उत्तेजना भरता है। प्रस्तुत प्रसंग 'पटकथा' से उद्भूत है।

हिंदुस्तान कवि से नींद में मिलता है। वह शोषक और शोषित के चेहरे को बेनकाब करता है। भूख आदमी के लिए रोटी सबसे बड़ा सच है। रोटी जीने की मूलभूत ज़रूरत है। शोषण का चक्र हाशिए में जी रहे लोगों से रोटी छीनना चाहता है। परंतु रोटी के लिए ईमान बेचना पशुता है। मनुष्य होने की कुछ आवश्यक शर्तें हैं। अपनी भूख मिटाने के लिए उसे अमानवीय नहीं बनना चाहिए। भूख व्यक्ति का सच है और भाषा सामाजिक सच है। भूख और भाषा दो प्रतीक हैं। भूख पशुता का प्रतीक है तथा भाषा सांस्कृतिक निष्ठा का प्रतीक है। भूखे मनुष्य की पहली ज़रूरत क्षुधा को शांत करने की होती है। यदि हम भूख को ही केन्द्र में रखते रहे तो पशुता को ही बढ़ावा देंगे। व्यक्तिगत चेतना ने मनुष्य को आत्मकेन्द्रित बनाया। आत्मकेन्द्रित मानसिकता में स्वार्थ और लालच की प्रवृत्ति होती है, अधिक से अधिक संग्रह करने की आकांक्षा होती है। हिंदुस्तान इस पशुता के प्रति चेतावनी देता है। भूख भाषा को खाती है इसका स्पष्ट अर्थ है कि वैयक्तिक अस्मिता सांस्कृतिक अस्मिता को तोड़कर गतिशील होती है। वैयक्तिक चेतना में चतुराई और उपयोग की प्रमुखता होती है। अपने फायदे के लिए दूसरों का उपयोग करना वैयक्तिक चेतना का चरित्र है। वैयक्तिक चेतना में एक प्रकार की निरपेक्षता होती है। यह निरपेक्षता उसे समाज के दुख दर्दा के प्रति तटस्थ बनाती है।

नफरत और रोशनी आदिम मानवीय भाव हैं। जंगल, आदिम और मौलिक प्रवृत्ति का संकेत है। हिंदुस्तान मनुष्य के इन मूल भावों को जगाने की चेष्टा करता है। मनुष्य के भीतर के मौलिक भाव और आवेग ही समाज में मौलिक परिवर्तन उपस्थित कर सकते हैं। समाज का नेतृत्व उन्हीं के हाथ में होना चाहिए जिनमें इस तरह के भावावेग हैं। लाखों आदमी इस तरह

से अनुभव करते हैं। वे कुशल नेतृत्व की बात जोह रहे हैं। कवि यथास्थितिवाद के तिलिस्म को तोड़ने का आग्रह करता है। हिंदुस्तान जटिल समस्याओं से लड़ने को ललकारता है।

### विशेष

- 1) पूँजीवाद ने समाज में असमानता को बढ़ाया है। कवि इसकी आलोचना करता है।
- 2) कवि मनुष्य में सांस्कृतिक बोध विकसित करना चाहता है।
- 3) कवि समाज में परिवर्तन का पक्षधर है।
- 4) कवि की आस्था सामूहिक मानव के प्रति है।
- 5) कविता में फंतासी शिल्प और भाषण-शैली का प्रयोग है।
- 6) कविता में तुकों के प्रयोग से लय की रचना की गई है।
- 7) कविता में गद्यात्मक भाषा का प्रयोग है। इस गद्यात्मकता में विचारों की लयात्मक अन्विति है।